IMPACT FACTOR 7.50 (SJIAI)
बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 2, April-june, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
https://doi.org/10.5281/zenodo.20647450
ISSN : 3048-6971

स्मृति धर्मषास्त्रीय निबन्धग्रन्थों का उद्भव, परम्परा एवं प्रतिपाद्य विषय

डॉ. दिलीप कुमार नाथाणी (डी.लिट्.)
सहायक–आचार्य, संस्कृत, श्रीपारसमल बोहरा नेत्रहीन महाविद्यालय
जोधपुर, राजस्थान

आलेख का सार संक्षेप

स्मृतियों में विवेचित विषय–वस्तु को उपविषयों में विभाजित करते हुये एक ही स्थान पर सभी धर्मशास्त्रकारों के मतों का संकलन करना एवं उस विषय से सम्बन्धित अन्यान्य पुराण, दर्शन, सूत्रग्रन्थ, आरण्यक, संहिताओं आदि में जो भी सामग्री प्राप्त होती है उसे भी प्रमाण आदि भावेन संकलित करना ही निबन्ध ग्रन्थों का मुख्य उद्देश्य रहा हैं। शनैः शनैः ज्ञान की सीमितता, ग्रन्थों की उपलब्धता का अभाव एवं परम्परया मानव बुद्धि के ह्रास को देखते हुये पूर्व के विद्वानों ने भाष्यों, टीकाओं आदि के साथ ही निबन्धग्रन्थों के लेखन को महत्त्व दिया, एवं यह कार्य धर्म की रक्षा में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ, विशेष कर इनके माध्यम से स्मृतियों के मूल भाव जिसके अन्तर्गत आचार–व्यवहार–प्रायश्चित्त से धर्म रक्षण का कार्य हुआ। इसलिये इन्हें नव्य स्मृति भी कहा जाता है।

निबन्ध के मुख्य शब्द (की वर्ड्स):– निबन्धग्रन्थ, नव्यस्मृति, आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त, दत्तक, धर्मशास्त्र, श्रुति, स्मृति, भाष्यकार, नव्यस्मृति।

आलेख

धर्मशास्त्र सम्बन्धी साहित्य को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है। यह विभाजन काल के आधार पर है। यह काल भी युगभेद पर आश्रित है। कलियुग से पूर्व वेद प्रधान मानकर कई नवीन ग्रन्थों की रचना होती रही। कलियुग के उपरान्त किसी भी नवीन ग्रन्थ, यथा स्मृति, पुराण, महाकाव्य आदि के लेखन का कोई उद्धरण हमें दिखाई नहीं देता। अपितु कलियुग के प्रारम्भ से ही ग्रन्थों के संक्षिप्तिकरण, भाष्यों, एवं टीकाओं का काल आया। यही युग था जब श्रुति, स्मृति, पुराणों आदि के अन्तर्गत आने वाली विषय वस्तु को विभागशः करते हुये प्रत्येक प्रधान संज्ञा आधारित किसी एक विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण साहित्य को एकत्र संकलित करने की परम्परा विकसित हुई। निबन्धग्रन्थ इसी परम्परा का विकसित स्वरूप है। यह काल कई वर्षों तक अनवरत चलता रहा जो कि अद्यापि भाष्यों एवं टीकाओं के रूप में विद्यमान है। कलियुग के प्रारम्भ बहुधा स्मृतियों पर भाष्यों की परम्परा रही, किन्तु विक्रम की बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक नवीन परम्परा उत्पन्न हुई कि लेखकों ने भाष्य न लिखकर स्मृतियों के धर्म–सम्बन्धी सिद्धान्तों को लेकर स्वतंत्र रूप से निबन्ध लिखने प्रारम्भ किये। स्वयं विश्वरूप, मिताक्षरा, अपरार्क आदि ने लिखे तो भाष्य किन्तु उनकी कृतियाँ निबन्धग्रन्थों की पूर्वपीठिका के रूप में देखी जा सकती है।

अतः श्रुति,स्मृति, पुराण एवं इतिहासों में धर्म तथा धर्मषास्त्र के जो भी विषय आये हैं, उन सभी विषयों से सम्बद्ध वचनों का इन निबन्धग्रन्थों में एकत्र संग्रह कर दिया गया है। इससे यह सुविधा होती है कि जिस विषय में जिज्ञासा हो, उसके सम्बन्ध में श्रुति–स्मृति–पुरण आदि ग्रन्थों में क्या कहा गया है, वह एक ही स्थान में देखने को मिल जाता है। अतः एक ही ग्रन्थ को देखने से सभी ग्रन्थों के वचनों का सहज ही ज्ञान हो जाता है। जैसे दान, आचार, तीर्थयात्रा, श्राद्ध, प्रायष्चित्त आदि विभिन्न विषयों का अनेक स्मृतियों और पुराणों में प्रतिपादन हुआ है। इन विषयों के वचनों का संकलन तथा उनका निरापद निर्णय प्रस्तुत करना ही इन निबन्धग्रन्थों का उद्देष्य है। यद्यपि धर्मषास्त्र में इन निबन्धग्रन्थों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, तथापि धर्मशास्त्रीय आर्ष ग्रन्थों के वचनों का एकत्र संग्रह और संदेहों का समाधन होने से विद्वज्जगत् में तथा धर्मशास्त्रीय परम्परा में इन ग्रन्थों का विशेष गौरव है। ये भी एक प्रकार से स्मृतिग्रन्थों की ही श्रेणी में है। स्मृति तथा पुराणों में जो धर्माचरण के निर्देश दिये हैं, उनका ही इनमें विस्तारषः संकलन हुआ है। और धर्मशास्त्रों के वचनों की एकवाक्यता इनमें निरूपित है, इसीलिये ये निबन्धग्रन्थ, निर्णयग्रन्थ नाम से भी अभिहित किये जाते हैं।

यद्यपि निबन्धग्रन्थों, भाष्यों व व्याख्याओं तथा टीकाओं की परम्परा मेधातिथि, देवस्वामी, असहाय आदि विद्वानों के द्वारा ही प्रचलित हो चुकी थी, तथापि प्रथम निबन्धग्रन्थ के रूप में भगवान् धनवन्तरि के अवतार काशिराज दिवोदास के द्वारा निर्मित 'दिवोदासीय' ग्रन्थ को रखा जा सकता है। उसके अनेक वचन निर्णयसिन्धु में कमलाकर भट्ट ने दिये हैं।

निबन्धग्रन्थ की परम्परा

निबन्ध ग्रन्थो की यह परम्परा भारत के विभिन्न–प्रान्तों में राजाओं–महाराजाओं के संरक्षण में सभी विद्वानों के सहयोग से चलती रही। हेमाद्रि का चतुर्वर्ग चिन्तामणि, मित्रमिश्र का वीरमित्रोदय, नीलकण्ठ भट्ट का भगवन्तभास्कर, रघुनन्दन भट्टका स्मृतितत्त्व, बलालसेन का दानसागर तथा प्रतिष्ठसागर आदि निबन्ध निर्मित हुये जो कि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहे गये हैं। इसी

प्रकार मदनपारिजात, विधानपारिजात, दलपतिराज का नृसिंहप्रसाद, देवण्णभट्ट की स्मृतिचन्द्रिका आदि निबन्धग्रन्थ भी बहुत ही प्रसिद्ध एवं प्रमाणिक कहे गये हैं। सायणाचार्य के ग्रन्थों में विशेष वैशिष्ट्य रहा क्योंकि उनके पास विद्वानों का एक विशाल समूह था वे विजयनगर के महाराज हरिहरबुक्क के प्रधान अमात्य और प्रकारान्तर से सर्वेसर्वा संचालक थे। राजा हरिहरबुक्क के राजसभा में विद्वानों की संख्या बहुत अधिक थी, अतः उनके मंत्र, तंत्र, आयुर्वेद, वेदभाष्यों के अतिरिक्त कर्मकाण्ड के निबन्ध तथा सुभाषितों का भी संग्रह निबन्धग्रन्थों के रूप में हुआ, जिनमें तीर्थसुधानिधि, श्राद्धसुधानिधि, व्रतसुधानिधि, सुभाषितसुधानिधि, तथा आयुर्वेदसुधानिधि आदि निबन्धग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं।

बंगाल प्रान्त में भी निबन्धकारों का एक विषाल समूह था जिन्होंने समय समय पर विभिन्न राजाओं के राजाश्रित रहकर धर्मशास्त्रीय साहित्य की रचना की। बंगाल के निबन्धकारों में गोविन्दाचार्य कवि कंकणाचार्य ने श्राद्धकौमुदी, दानकौमुदी एवं शुद्धिकौमुदी आदि की रचना की थी। ऐसे ही शूलपाणि का 'स्मृतिविवेक' अनिरुद्ध का हारलता तथा पितृदयिता और जीमूतवाहन के दायभाग, कालविवेक आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। मिथिला के निबन्धकारों में श्रीदत्त उपाध्याय, चण्डेश्वर, वाचस्पति मिश्र आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार कमलाकर भट्ट, ने तीर्थकमलाकर, व्रतकमलाकर, श्राद्धकमलाकर, दानकमलाकर आदि निबन्धग्रन्थ लिखे और नागेश भट्ट ने तीर्थेन्दुशेखर, श्राद्धेन्दुशेखर, व्रतेन्दुशेखर आदि ग्रन्थ 'शेखर' नाम से लिखे। काशीस्थ नारायण भट्ट ने त्रिस्थलीसेतु आदि मे ंतीर्थ–सम्बन्धी निर्णयों को संग्रहित किया और काषी, प्रयाग तथा गया पर विशेष विचार किया। पर कमलाकर भट्ट को इन सब प्रक्रियाओं के विभिन्न रूप मे कुछ अनिर्णीत रहने के कारण व किंचित् शंकाग्रस्त रहने की स्थिति में निर्णय करने मे कठिनता प्रतीत हुई। अतः शीघ्र निर्णय के लिये उन्होंने सभी के साररूप में निर्णयसिन्धु का निर्माण किया। यह ग्रन्थ धर्मशास्त्र के विद्वानों में अति मान्य हुआ। तथापि काशी के कुछ विद्वान् निर्णयसिंन्धु से कहीं कहीं असमत से हुये तो काषीनाथ उपाध्याय ने पूण्य नगर (पूना) से धर्मसिन्धु का निर्माण कर काषी भेज दिया और यह निवेदन किया कि यदि यह विशेष उपयोगी हो तो स्वीकार कर लिया जाय अन्य गंगाजी में डुबो दिया जाय, पर सभी प्रान्तों के निवास करने वाले काशीस्थ विद्वानों की परम्परा ने उसे पालकी में रखकर चार दिन तक घुमाया और वह निर्णय मान लिया गया। इस प्रकार निर्णयसिन्धु तथा धर्मसिन्ध दोनों को ही धर्मसम्बन्धी विषय में निर्णय के लिये बहुत महत्त्व का माना जाता है। परन्तु यह परम्परा यही नहीं रुकी कुछ शेष रहे निर्णयों के लिये निर्णयामृत, पुरुषार्थचिन्तामणि आदि अनेक निर्णयात्मक ग्रन्थ लिखे गये। केवल व्रतों के निबन्धों में रणवीरसिंहव्रतरत्नाकर, व्रतराज, व्रतार्क, उत्सवसिन्धु, व्रतोत्सवकौमुदी, जयसिंहव्रतकल्पद्रुम, जोधपुर से विश्वेश्वर स्मृति, आर्यविधानम् आदि अनेक निर्णयात्मक ग्रन्थ लिखे गये। उनमें स्थान स्थान पर व्रतों के माहात्म्य उस दिन के कृत्य और होनेवाले दान आदि का संग्रह प्राप्त होता है। [1]

निबन्ध ग्रन्थ की परम्परा अत्यन्त ही विशाल व विस्तृत परम्परा रही है। पूर्व में जितने भी निबन्ध ग्रन्थ छपे हैं उनके प्राक्कथन अथवा भूमिका में सम्पादकों ने इस पर विस्तृत चर्चा की है। निबन्धग्रन्थ की परम्परा इस तथ्य से ही समृद्धिशाली प्रमाणित होती हैं कि केवल दत्तक विशय को लेकर कुल 76 ग्रन्थों को उल्लेख प्राप्त होता है। उन ग्रन्थों को विवरण इस प्रकार है[2]

क्र.सं	निबन्ध ग्रन्थ का नाम	रचनाकार	प्रकाशन / वर्ष
1.	दत्तक–कौमुदी	रामजय तर्कालंकार	कलकत्ता–1827
2.	दत्तक–कौस्तुभ	केदारनाथ	कलकत्ता
3.	दत्तक–चन्द्रिका	कुबेर	कलकत्ता 1857
4.	दत्तक–चन्द्रिका(2)	श्री कोलापाचार्य	
5.	दत्तक–चन्द्रिका (3)	तोलाप्पारा	
6.	दत्तक–चन्द्रिका–टीका	तकोनलाल	
7.	दत्तकतत्त्व–विनिर्णय	हरिनारायण मिश्र	
8.	दत्तक–तिलक	भवदेव	
9.	दत्तक–दर्पण	द्वैपायन	
10.	दत्तक–दीधिति	महामहिम अनन्त भट्ट	कलकत्ता व भावनगर
11.	दत्तक–निर्णय	तात्यशास्त्रीन्	
12.	दत्तक–निर्णय (2)	विश्वनाथ उपाध्याय	
13	दत्तक–निर्णय (3)	शूलपाणी शौण्डिन्य	
14.	दत्तक–निर्णय (4)	श्रीनाथभट्ट वा श्रीनाथ आचार्य चूढ़ामणी	
15.	दत्तकपुत्र–विधान	अनन्तदेव	
16.	दत्तकपुत्रविधान (2)	नृसिंहभट्ट	
17.	दत्तकपुत्र विधि	शूलपाणी	

[1]कल्याण, धर्मशास्त्रांक, पृ. 325

[2] दत्तकतिलक, भवदेव, भूमिका, पृ– xliii

18.	दत्तक–मीमांसा अथवा दत्तक–पुत्रनिर्णय–मीमांसा	नन्द पण्डित वा विनायक पण्डित	कलकत्ता 1857 व 1885 तथा आनन्दआश्रम प्रेस पूना1941
19.	दत्तक–मीमांसा	माध्वाचार्य	
20.	दत्तकविधि	नीलकण्ठ (व्यवहारमयूख का सार स्वरूप)	
21.	दत्तकविधि (2)	वाचस्पति	
22.	दत्तक–विवके	शूलपाणि	
23.	दत्तक–सापिण्ड्या निर्णय		
24.	दत्तकोज्वला	वर्धमान	
25.	दत्तक–चिन्तामणि	वज्रेश्वर	
26.	दत्तदायप्रकाश	व्रजनाथ विद्यारत्न	कलकत्ता 1875
27.	दत्तपुत्र–तत्त्व–विवके	वासुदेव भट्ट	
28.	दत्तपुत्रविधि		
29.	दत्तमंजरी		
30.	दत्तरत्नप्रदीपिका	श्रीनिवासाचार्य	
31.	दत्तरत्नाकर	धर्मराजेध्वरेन्द्र	
32.	दत्तरत्नार्पण	सीतारामशास्त्रीन्	
33.	दत्तविधि	वैद्यनाथ	
34.	दत्तसंग्रह	भीमसेन कवि	
35.	दत्तसिद्धान्त मंजरी	बालकृष्ण	
36.	दत्तसिद्धान्त मंजरी	भट्टभास्कर पण्डित	
37.	दत्तसिद्धान्त–मन्दार–मंजरी		
38.	दत्त–स्मृतिसार		
39.	दत्तहोमानुक्रमणिका		
40.	दत्तादर्ष	माधवपण्डित	
41.	दत्तार्क	दादा करजुगी	
42.	दत्ताषौच–व्यवस्थापनवाद	रामसुब्रह्मण्य स्वामी	
43.	दत्तककुठार		
44.	दत्तकक्रमसंग्रह	शुक्रष्ण तर्कालंकार भट्टाचार्य	
45.	दत्तकग्रहण प्रयोजी		
46	दत्तकग्रहण विधि	रुद्रधर	
47.	दत्तक–चन्द्रिका	श्यामतल	
48.	दत्तक–निर्णय	नन्दपण्डित	
49.	दत्तकनिर्णय	हरिनाथ मिश्र	
50.	दत्तकनिर्णयामृत	श्रीधरण शास्त्री	
51.	दत्तकन्यायप्रवृत्ति	गोविन्दार्णव	
52.	दत्तकपुत्रकरणविधि	नवद्वीप	
53	दत्तकपुत्रग्रहणकाल		
54.	दत्तकपुत्रनिरूपण विधि	वाचस्पति मिश्र	
55.	दत्तकपुत्रप्रतिग्रहण विधि	धर्मप्रकाष	
56.	दत्तकपुत्र प्रयोग		
57.	दत्तक–प्रकरण	स्मत्यर्थसार से संग्रहीत	
58.	दत्तक–सापिण्ड्या–निर्णय		
59.	दत्तकविषय		
60.	दत्तकौमुदी	विट्ठलार्य अयर	
61.	दत्तकौमुदी(1)		
62.	दत्तककौस्तुभ		
63.	दत्तकाषौच		
64.	दत्तकाषौचनिर्णय		
65.	दत्तकगृह्यागृह्यचार	मौदालिक	
66.	दत्तकोज्ज्वला	वर्धमान	
67.	दत्तकोलाहल	रंगनाथ	
68.	दत्तकोल्लास	रामकृष्णकदम्भ	उज्जैन, नवीन संस्करण

69.	दत्तचन्द्रिका	पट्टाराचार्य	
70.	दत्तचन्द्रिका	हरदत्त	
71.	दत्तचिन्तामणि	वांछेष्वर	
72.	दत्त–दत्तिका–भाषा–दिनम्–धानाधिकारी–विचार	माण्डलिक	
73.	दत्त–प्रकरण–मीमांसा	लेगाक्षिभास्कर	
74.	दत्तमीमांसा समीकरण	ईष्वरयज्वम्	
75	दत्तरत्न प्रदीपिका	वैंकटाचार्य	

इस प्रकार केवल दत्तक विषय पर ही हमें इतने सारे ग्रन्थों का विवरण प्राप्त होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि भारत में धर्मशास्त्रों का जनमानस में कितना प्रभाव था। वीरमित्रोदय जैसे विशाल धर्मशास्त्रीय निबन्ध–ग्रन्थों के अलावा केवल एक ही विषय को अंगीकृत करके निबन्ध–ग्रन्थ लिखने की परम्परा भी रही है। इस दृष्टि से कई धर्मशास्त्रीय–निबन्ध–ग्रन्थ भी लिखे गये। निबन्धग्रन्थों की परम्परा को निबन्धग्रन्थों में भी कहा गया है। श्रीप्रतापरुद्र ने अपने सरस्वतीविलास के व्यवहारकाण्ड में स्पष्टतः अपने से पूर्व के निबन्धकारो को उल्लेखित किया है। यद्यपि कई निबन्धकारों ने अपेन से पूर्व के निबन्धकारों को उद्धरण के रूप में उद्धृत किया है किन्तु सरस्वती विलास में तो निबन्धकार कहकर उनके नामोल्लेख स्पष्ट रूप से किये हैं– **निबन्धकारैः कुलार्कलक्ष्मीधरप्रभृतिभिः लोकानुजिघृक्षयास्मृतिव्याव्याख्यानव्याजेनसर्वाः स्मृतयोव्याख्याताषिष्टा...विज्ञानयोगिभारुचि मेधातिथ्यसहायापरार्कचन्द्रिकाकारकुलार्कलक्ष्मीपति– प्रभृतिभिः प्रबन्धृभिः निर्मितेषुप्रबन्धेषु..... ।**[3] अतः इन निबन्धकारों के द्वारा रचे गये प्रबन्धों में इस प्रकार से सरस्वतीविलास के रचनाकार ने स्पष्ट रूप से नामोच्चार करके पूर्व के निबन्धग्रन्थकारो की परम्परा का लक्षित किया है।

धर्मषास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय

धर्मषास्त्रं तु वै स्मृतिः इस मनु वचन के आधार पर श्रुति के बाद का सारा साहित्य धर्मशास्त्र है एवं वही स्मृति भी है। यद्यपि स्मृति के नाम से ग्रन्थ विशेष भी है। तथापि धर्मशास्त्र का सम्पूर्ण साहित्य ही स्मृति है। जैसा कि देवण्ण भट्ट ने स्मृति चन्द्रिका में धर्मशास्त्रों के प्रयोजन को प्रमाणित करते हुये कहा है कि वैदिक शब्द दुर्बोद्ध हैं अतः उनके स्पष्ट अर्थ स्मृतितंत्र में प्राप्त होते हैं–

दुर्बोधा वैदिकाषब्दाः प्रकीर्णत्वाच्च ये खिलाः।
तज्ज्ञैस्तु एव स्पष्टार्थाः स्मृतितन्त्रे प्रतिष्ठिता।।

इति एवं पुराणानामपि प्रामाण्यं प्रयोजनवत्त्वं च सिद्धम्। इस प्रकार धर्मशास्त्रों के प्रणयन का जो प्रयोजन था वही प्रयोजन यहाँ स्वतः प्रमाण के रूप में धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों के प्रणयन पर भी क्रियान्वित होता है। अतः कलियुग के प्रारम्भ के उपरान्त नवीन ग्रन्थों एवं स्मृतियों का स्वरूप प्रकट नहीं हुआ। वरन् जो आदिकाल से स्मृतियाँ, पुराणादि प्रचलित थे, उन्हीं में विवेचित विषयों से सम्बन्धित विषयवस्तु को एकत्र संकलन करने की नवीन परम्परा का प्रणयन हुआ। जिसके अन्तर्गत इन निबन्ध ग्रन्थों की रचना हुई।

विषय वस्तु

वेद, स्मृति व पुराणों में जो विषय वस्तु मनुष्य के जीवन व परलोक के लिये हितकारी है वही तथ्य एक ही स्थल पर एकत्रित किये गये हैं। धर्मशास्त्रीय–निबन्ध–साहित्य अत्यन्त ही विशाल तथा विस्तृत रूप से लिखा गया है। इनमें विषय–बाहुल्य की दृष्टि से हेमाद्रि का चतुर्वर्गचिन्तामणि, देवण्णभट्ट की स्मृतिचन्द्रिका, मित्रमिश्र का वीरमित्रोदय, चण्डेश्वर के रत्नाकर नाम से विहित ग्रन्थ, नीलकण्ठ भट्ट का भगवन्त भास्कर अथवा मयूख नाम से विहित ग्रन्थ आदि कुछ ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका कलेवर अत्यन्त ही विषाल है। इन ग्रन्थों में सभी विषयों को संकलित कर दिया गया है । इनके विषय–वस्तु को मूलतः तीन भागों में विभक्त किया गया है– (1) आचार, (2) व्यवहार, (3) प्रायश्चित्त।

(अ) आचारः–आचार के अन्तर्गत चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों के कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है। यथा आश्रमों में गृहस्थ का कर्त्तव्य, साथ ही गृहस्थ का अन्य आश्रमों के प्रति व्यवहार आदि का विश्लेषण किया गया है। इसी प्रकार वानप्रस्थी का क्या कर्त्तव्य है? तथा उसका जीवन कैसा होना चाहिए? संन्यासी के लक्षण व उसका धर्म और उसके दैनिक आचार उसकी वृत्ति आदि का वर्णन धर्मशास्त्रों में है जो कि आचार के अन्तर्गत आते हैं। धर्मशास्त्रकारों ने नैतिक गुणों को अत्यधिक महत्त्व दिया है और इनके पालन के लिए बल देते हुए वर्णाश्रम हेतु सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं, धर्मशास्त्र के द्वारा धर्मशास्त्रकारों का सीधा सम्पर्क सामान्य जीवन से था, अतः उन्होंने सामान्य धर्म की अपेक्षा वर्णाश्रम धर्म की विषद व्याख्या करना उचित समझा। आचार मनुष्य के सामान्य जीवन से सम्बद्ध होने से धर्मशास्त्रकारों ने आचार–शास्त्र के सिद्धान्तों का सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

[3] सरस्वतीविलास, व्यवहारकाण्ड, पृ. 15, श्रीप्रतापरुद्रमहादेवमहाराजविरचत, मैसूरराजकीय शाखा प्रेस–1927

धर्मशास्त्रकार ऋषियों ने उच्चतर जीवन के लिए तन और मन दोनों का अनुशासित होना परम आवश्यक लक्ष्य कहा है, अतः निम्नतर लक्ष्यों का उच्चतर गुणों एवं मूल्यों के आश्रित हो जाना परम आवश्यक माना है। वस्तुतः धर्म का व्यावहारिक पहलू है आचार और इसी कारण इसे परम धर्म भी कहा गया है, धर्म की आधारशिला कहा गया है–

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामपि निष्चयः।
हीनाचारविपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नष्यति।।[4]

आचारहीन व्यक्ति के लिए लोक में कोई सुख नहीं है और उसे दूसरे लोक में भी सुख की प्राप्ति नहीं होती। आचार भ्रष्ट के लिये वसिष्ठ कहते हैं–

आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः शडंगास्त्वखिला सयज्ञाः।
कां प्रीतिमुत्पादयितुं समर्था अन्धस्य दारा इव दर्षनीयाः।।[5] **।।**

धर्मशास्त्र की दृष्टि में आचार का इतना महत्त्व है कि आचारहीन पिता तक का परित्याग करने का आदेष दिया गया है आचार वह कसौटी है जिस पर व्यक्ति की योग्यता और अर्हा का आकलन होता है। चरित्रहीन विद्वान् की विद्वत्ता विवर्ण होती है। आचार और ज्ञान का समन्वय तथा परस्पर समायोजन ही हमारी नैतिक भावना का प्रथम सूत्र है, जिसने महान् दार्शनिकों एवं अलौकिक प्रतिभा और प्रभाव वाले पुरुषों को जन्म दिया है। अतः इसीलिये आचाराध्याय का प्रणयन किया गया है।

(ब) व्यवहारः–धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थों का द्वितीय विषयाध्याय व्यवहार है जिसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विधि या कानून पद से अभिहित किया गया है। इसके अन्तर्गत अद्यतन के सभी पौरुष (फौजदारी) और दिवानी सम्बन्धी विधिसूत्रों का समावेश किया गया है। जिसमें साहस व पारुष्य के अन्तर्गत दण्ड और उसके प्रकार तथा साक्षी और उसके प्रकार एवं शपथ, अग्निशुद्धि, व्यवहार की प्रक्रिया, न्यायकर्ता के गुण और न्याय–निर्णय का ढंग आदि वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त सीमा का निर्णय, सम्पत्ति का विभाजन, दाय के अधिकारी, दाय का अंश, स्त्रीधन, करग्रहण की व्यवस्था, आदि से सम्बन्धित विधिसूत्र प्राप्त होते हैं।

भारतीय धर्मशास्त्रों में विधि को व्यवहार शब्द से अभिहित किया गया है। विधि के लिये व्यवहार शब्द सर्वप्रथम बृहस्पति स्मृति में प्राप्त होता है। यही बृहस्पति स्मृति में ही व्यवहार की उत्पत्ति के कारण को भी समझाया गया है। एवं उसका औचित्स स्पष्ट करते हुये ही बृहस्पति ऋषि ने अपनी स्मृति में लिखा है कि–

धर्मप्रधानाः पुरुषाः पूर्वमासन्नहिंसकाः।
लोभाद्वेषाभिभूतानां व्यवहारः प्रकीर्तितः।।[6]

अर्थात् पूर्व में मानव धर्मप्रधान था, वह अहिंसक था। किन्तु शनैःशनैः द्वेष से अभिभूत होने के कारण उसमें अपराध उत्पन्न हुआ, इस प्रकार द्वेषादि के कारण उत्पन्न अपराध के नियमन हेतु व्यवहार की स्थापना ऋषियों ने की। देवर्षि नारद ने अपनी स्मृति में इस श्लोक के अर्थ को अधिक विवृत किया है। नारद स्मृति वास्तव में एक विधि संहिता ही है यदि ऐसा कहा जाय तो अधिक उचित होगा।

(स) प्रायष्चित्तः– धर्मशास्त्र के प्रायश्चित्त–खण्ड में धार्मिक तथा सामाजिक कृत्यों के न करने अथवा उनकी अवहेलना करने से जो पाप होते हैं, उनके प्रायश्चित्त का विधान है। यह तथ्य स्वयं सिद्ध है कि शास्त्रविहित कर्म न करना ही पाप है तथा पाप और प्रायश्चित्त की धारणा के पीछे भी आचार व्यवस्था है। पाप और प्रायश्चित्त का सिद्धान्त धर्मसूत्रों में अत्यन्त व्यावहारिक है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध देह से है, मनुष्य के कर्म स्थायी परिणाम उत्पन्न करते हैं। तथा ये कर्म मनुष्य को सुख अथवा दुःख दे सकते हैं। अतः कृत कर्मों के द्वारा प्राप्त होने वाले दुःखजनित परिणामों से मुक्त्यर्थ तप, उपवास और होम धर्म में आस्था उत्पन्न करके पुनः उत्तम आचरण की प्रेरण देते हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति में तृतीय अध्याय के श्लोक संख्या 206 से 334 तक प्रायश्चित्त का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है–

महापातकजान् घोरान्नरकान् प्राप्य गर्हितान्।
कर्मक्षयात् प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह।।[7]

महापातकी आत्मा घोर नरकों की यातना भोग कर अपने पाप कर्मों के क्षय के उपरान्त पुनः इस लोक में जन्म ग्रहण करती है। इस प्रकार इन महापातकियों के जन्म के साथ वे किस–किस कर्म के द्वारा किस–किस योनि में तथा कैसे–कैसे कष्टों को प्राप्त करते है। ऐसा कथन करते हुए उनके प्रायष्चित्त का उल्लेख किया है, तथा प्रायश्चित्त का महत्त्व बताते हुए कहा है–

तस्मात्तेनेह कर्त्तव्यं प्रायष्चित्तं विषुद्धये।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकष्चैव प्रसीदति।।[8]

---

[4] वसिष्ठधर्मसूत्र 6.1

[5] वसिष्ठधर्मसूत्र 6.4

[6] स्मृतिचन्द्रिका भाग दो पृ 1,

[26] याज्ञवल्क्य स्मृति 3.206

[27] याज्ञवल्क्य स्मृति 3.220

प्रायष्चित्तमकुर्वाणाः पापेषु निरता नराः।
अपष्चात्तापिनः कष्टान्नरकान् यान्ति दारुणान्।।[9]

इस प्रकार पापों से मुक्ति हेतु प्रायष्चित्त का विधान करते हुए विभिन्न पापों के लिये विहित प्रायश्चितों का वर्णन किया है। साथ ही कुछ सरल प्रायश्चितों का भी उल्लेख किया है कि जब कोई पाप ऐसा हो जिसका उपचार या प्रायश्चित्त कहीं प्राप्त न हो तब ऐसे पापों के लिये विहित प्रायश्चित्त विधियों का भी उल्लेख किया गया है–

प्राणायामषतं कार्यं सर्वपापापनुत्तये।
उपपातकजातानासनादिष्टस्य चैव हि।।[10]
ओंकाराभिष्टुतं सोमसलिलं पावनं पिबेत्।
कृत्वा तु रेतोविण्मूत्रप्राषनंच द्विजोत्तमः।। [11]
निषायां व दिवा वाऽपि यदज्ञानकृतं त्वघम्।
त्रैकाल्यसन्ध्याकरणात्तत् सर्वं विप्रणष्यति।।[12]

अस्तु याज्ञवल्क्य , कात्यायन, शातातप, मनु, बृहस्पति ने प्रायष्चित्त को महत्त्व देते हुए इसे इहलोक व परलोक हेतु कल्याणार्थक बताया है। धर्मशास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। समस्त वैदिक व स्मार्त्त वाङ्मय में धर्म की चर्चा है जो मनुष्य, समाज, राष्ट्र के कल्याणार्थ है। धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों में वही विषय है जो कि स्मृतिग्रन्थों में है तथापि इन ग्रन्थों में स्मृति व पुराणो में विवेचित विषयवस्तु को एक शीर्षक के अन्तर्गत सारी सामग्री एक ही साथ एकत्रित करके कहीं कहीं पर उसकी टीका भी की गई है। इसके अन्तर्गत मित्रमिश्र के वीरमित्रोदय, स्मृतिमुक्ताफल, स्मृतिचन्द्रिका, सरस्वतीविलास, कृत्यरत्नाकर में विभिन्न स्मृतियों, सूत्रग्रन्थों, पुराणों में दिये गये श्लोकों के साथ उन पर निबन्धकार ने अपनी टीकाएँ भी लिखी हैं। जो कि श्लोक के सही अर्थों को समझने में श्रेयस्कर हैं।

इन निबन्ध ग्रन्थों में स्मृतियों के ही नहीं वरन् पुराणों एवं वेदों के भी विशेष कर हेमाद्रि ने अपने ग्रन्थ **चतुर्वर्गचिन्तामणि** में तो कई स्थानों पर वेदों के मन्त्रों को भी प्रस्तुत किया है। ऐसे में इन धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों को **नव्यस्मृति** के रूप में भी जाना जाता है।

---

[28] याज्ञवल्क्य स्मृति 3.221
[29] याज्ञवल्क्य स्मृति 3.305
[30] याज्ञवल्क्य स्मृति 3.306
[31] याज्ञवल्क्य स्मृति 3.307